



E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 69-71
Received: 12-05-2020
Accepted: 13-06-2020

डॉ. पुष्पा कुमारी

इतिहास विभाग, ललित नारायण
मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा,
बिहार, भारत

मध्यकालीन साहित्य और संस्कृति का ऐतिहासिक परिदृश्य

डॉ. पुष्पा कुमारी

सारांश

भारतीय इतिहास की परम्परा में गुप्तयुग के बाद दूसरा महत्वपूर्ण युग मध्ययुग का मुगलकाल ही माना जा सकता है। यही एक ऐसा काल था जब भारत में राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य और कला आदि के क्षेत्र में कतिपय नवीनताओं, विचित्रताओं, संगतियों और विसंगतियों आदि का आधान हुआ। वस्तुतः यह युग दो संस्कृतियों के मिलन का युग था। भारतीय और मुगल सांस्कृतिक के मिलन से एक नई संस्कृति का जन्म हुआ। इस नवजात संस्कृति ने भारतीय जीवन के लगभग सभी पक्षों और परिवेशों को बड़ी गहराई तक स्पर्श किया इससे प्रभावित होकर अनेक कथाकारों ने ऐतिहासिक कथा साहित्य की रचना की।

मध्यकालीन साहित्य का वातावरण, वैयक्तिक परिस्थितियाँ भौतिक साधन व्यक्ति और समाज, की सांस्कृतिक विवेक का स्वरूप देते रहे हैं। प्रकृति की सीमाओं में मनुष्य ने जो विजय चाही उसका भौतिक स्वरूप, सभ्यता और आत्मिक अथवा स्वरूप संस्कृति हैं। सभ्यता बाह्य प्रकृति पर हमारी विजय गर्व ध्वज है और संस्कृति अन्तः प्रकृति और विजय की प्राप्ति की सिद्ध सामाजिक संस्थान, आर्थिक प्रेरण प्रक्रिया और भौगोलिक स्थिति की भूमिका मानसिक घात-प्रतिघात, क्रिया और ज्ञानात्मक विकास होते हैं। संस्कृति वह संगम है जो जीवन की संगति और सामंजस्यपूर्ण सतत् प्रवहमान चीर-चैतन्य धारा की इकाई है। सामाजिक भूमिका में मानवार्जित क्षमता का एवं ज्ञान, आस्था कला, नैतिकता, कानून, रीति-नीति को स्वरूप देती है। जीवन की भौतिक प्रणाली आध्यात्मिक प्रेरणा को स्वरूप देती है आध्यात्मिक सांस्कृतिक ज्ञान भौतिकता का अनुशासन है। नाना-प्रकार की धर्म-साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा भक्ति अथवा योग मूलक अनुभूतियों में जीवन का सत्य ही व्यापक और परिपूर्ण रूप प्राप्त करता रहा है। जन्मजात संस्कार, भौतिक प्रणाली, सांस्कृतिक ज्ञान की भूमिका में जीवन अनुप्रणित, नियंत्रित और अनुशासित होता रहा है।

मुख्य शब्द: मध्यकालीन, साहित्य, संस्कृति, समाज, ज्ञान आदि।

प्रस्तावना

किसी भी साहित्य को समझना है तो उससे संबंधित उसकी जातीय परम्परा, राष्ट्रीय एवं सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करना जरूरी होता है। आदिकाल से लेकर आज तक के साहित्येतिहास में युग-बोध दिखाई देता है। उस समय के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा धार्मिक परिस्थिति का प्रभाव हमें साहित्य इतिहास में अवगत होता है।

संस्कृति के क्षेत्र में देश धर्म और जातिगत आधार का विचार उपयुक्त नहीं। मूलतया मानव-मात्र की सांस्कृतिक ज्ञान का पूर्ण इकाई है जो कुछ विभिन्नता दिखाई पड़ती है वह अभिव्यक्ति के साधनों की सीमा और परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण परम्परा के विकास, सामाजिक परिवेष्टन के नवीन स्वरूप और अन्य संस्कृतियों के अन्तरावलम्बन के कारण सांस्कृतिक ज्ञान में अंतर आता है। एकी ही समाज में विभिन्न स्वर होता है। एक ही समाज में विभिन्न स्वर होते हैं समाज का वर्गीय विभाजन सांस्कृतिक स्वरूप की सीमा और अनुशासन है।

ऐसे तो स्पष्ट सैन्धव को आर्यों का आदि देश मानने वाले विचारकों का अभाव नहीं। उनके अनुसार आर्य लोग न तो ध्रुव-प्रदेश में रहते थे, न मध्य एशिया में, न पश्चिमोत्तर यूरोप में। उनका घर सप्त-सिंधव में ही था। यहीं से उनकी संस्कृति दूर देशों तक गई। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार, आर्य कहीं बाहर से अवश्य आये। भारतीय संस्कृति संगम में तीन स्पष्ट धाराएँ दिखाई पड़ती हैं— आर्य समूह की संस्कृति, आर्योंतर मूल सैन्धव संस्कृति एवं आर्य-आर्योंतर संस्कृति संगम। काल क्रम में इनकी सीमाएँ परस्पर घुलती-मिलती रही।

गुप्तकाल में आकर संस्कृति के भारतीय स्वरूप ने एक निश्चित दिशा ग्रहण कर ली थी। ब्राह्मण धर्म और तर्जनीत विचारधारा के प्रभाव के कारण विशिष्ट शैली का विकास हुआ था। इस काल में ललित कलाओं के असाधारण मिली, सम्राटों के संरक्षण में कवि संगीतज्ञ, शिल्पी चित्रकार अपनी कलाओं के उत्तरोत्तर विकास में संलग्न थे। मूर्तिकला के मध्य आदर्श स्वरूप अनेकानेक हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ। अन्य धर्मों की मूर्तियाँ भी मनोहारिणी हैं। गुप्तकालीन तक्षकों की कला विमुग्धकारिणी है। अजन्ता के अनेक भित्ति चित्र इसी काल में चित्रित हुए थे। अविलोकतेश्वर का तात्त्विक विचार मग्न ध्यानी बुद्ध की भावपूर्ण मुद्रा अवलोकनीय है,

Corresponding Author:

डॉ. पुष्पा कुमारी

इतिहास विभाग, ललित नारायण
मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा,
बिहार, भारत

इसके चतुर चित्तों की सफाई अवर्णनीय है। साहित्य और वाङ्मय के क्षेत्र में यह युग अतुलनीय है। संस्कृत साहित्य की जितनी समृद्धि इस काल में हुई उतनी और कभी नहीं। समुद्रगुप्त, विद्याव्यसनी, गुणज्ञ, कलाकार, शास्त्र में अकुंठिता बुद्धि विलासी और कविराज संज्ञा से लाञ्छित था। कालिदास, विशाखदत्त, अमर सिंह, धन्वतरि जैसे कवि, नाट्यकार, कोणकार और चिकित्स उस युग में हुए। उत्तर गुप्त काल में भी आर्यभट्ट वराह मिहिर और ब्रह्म गुप्त ने ज्योतिष और गणित के ज्ञान को समृद्ध किया।

मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक विकास

वर्तमान में भी भारत के विकास में मध्यकाल का बहुत बड़ा योगदान है। इस दौर में भारत ने भवन निर्माण, कला, चित्रकला, धर्म, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुत विकास किया था, मध्यकाल में, बाबर, हुमायूँ और अकबर जैसे मुगल शासक हमारे देश में सांस्कृतिक विकास का प्रसार करने के लिए जाने जाते थे। इस क्षेत्र में अधिक से अधिक कार्य मुगल शासन के दौरान किया गया था। मुगल शासक संस्कृति के शौकिन थे : इसलिए सभी शासक शिक्षा के प्रसार के समर्थन में थे। मुगल परम्पराओं ने कई क्षेत्रीय और स्थानीय राज्यों की महलों एवं किलों को अत्यधिक प्रभावित किया।

दीघनिकाय के अनुसार आचार की कसौटी पर कसे जाने पर सभी खरे नहीं उतर सकते थे। ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते और ब्रह्मा के संबंध में मिथ्या भाषण करते थे। क्षत्रियों में कितने जीव हिंसक, मिथ्यालापी और मिथ्याचारी थे। वस्तुतः सांस्कृतिक ज्ञान के स्तरों में उच्चवर्गीय और निम्नस्तरीय धारणा का पार्थक्य सदा रहा। भारतीय संस्कृति को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय संस्कृति कहना उचित नहीं। उच्चवर्गों में नृत्य, गीत, नाटक-लीला, वाद्य, अश्लील भाव प्रदर्शन एवं जीव जन्तुओं को लड़ाना-भिड़ाना, कुश्ती, जूआँ आदि मनोरंजन के साधन थे। सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में अंजन, माला, मुख चूर्ण का उपयोग होता था और चारित्रिक रखलन के उदहरणों का अभाव नहीं था।

जातक कथाओं में सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न स्तरों की झांकी मिलती है अभिजात्य वर्गों की ऐश्वर्यमयी विलासिता, कला-प्रियता के साथ साधरण जनता की निरीहता, विवशता और मर्मभरी व्यथा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। दुर्बलों का घात होता था, अनौचित्य का अधिक्य था, चौर दण्ड से बच जाता था और चौर फंस जाता था, राज्याधिकरण पक्षपाती था। जातकों में समाज की उस अवस्था के स्पष्ट संकेत मिलते हैं जो मध्यकाल में दिखाई पड़ती है यद्यपि उसमें स्थान्तर कम नहीं हुआ था। अभिजात्य वर्ग का असाध सुखोपभोग, सूख के साधनों पर उनका एकाधिपत्य एवं विलासपूर्ण कला की मान्यता दिखाई पड़ती है। निम्न वर्ग के कुण्ठित चेतना, उनके जीवन और धारण को स्वरूप होती थी। ग्रामाधिकारियों का अत्याचार, चोरों का भय, करों की भयानकता, अभावग्रस्त करुणिक जन-जीवन के स्पष्ट चित्र इन कथाओं में प्राप्त हैं। ग्रामीण जनता हतचेत मूर्ख और अट्ट गंवार थी। उनकी सांस्कृतिक चेतना सजग नहीं थी।

मध्यकालीन साहित्य का सांस्कृतिक विचार

गुप्त साम्राज्य की विश्रुंखलता के साथ भारत की केन्द्रीय एकता नष्ट हो गयी, यद्यपि विश्रुंखल शक्तियों के एकीकरण का प्रयास सकलोलत्तरापथनाथ हर्ष ने किया। हर्ष विद्याव्यसनी और विधाओं का संरक्षक था। हर्ष चरित और कादम्बरी की रचना उसी काल में हुई। राजपूत काल के विभिन्न सम्राट विद्याव्यसनी और कला प्रेमी थे, उनके संरक्षण में साहित्य और शिल्प कलाओं का विकास हुआ किन्तु इतना स्पष्ट है कि कलाओं में नवीन कदाम्बनाओं के दर्शन नहीं होते। यशोवर्मन के समकालीन भवभूति और वाक्यतिराज थे। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न राज्यों की स्थापना और

जडीभूत जीवन की चेतना हीनता साहित्य और कला के क्षेत्र में परिलक्षित हुई।

मध्यकाल में यद्यपि संस्कृत में साहित्य रचना होती रही, भवभूति, राजशेखर, जयदेव प्रभृति प्रतिष्ठित कवि हुए किन्तु संस्कृत में अधिक उन्नति प्राकृति साहित्य की हुई। हर्षवर्धन के विभिन्न साम्राज्य के मगनावशेष पर जिन राज्यों का संगठन हुआ उनके अधिकांश अधिपति साधारणतया परम्परागत आर्य नहीं, बल्कि आर्यीकृत हिन्दू थे। अपभ्रंश भाषाओं का विकास इसी काल में होता है जिसके उत्तर विकास के रूप में हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, उड़िया, आसामी, पंजाबी आदि आधुनिक भाषाएँ हैं। नाटकों, में जिन्हें विभाषा कहा गया है वे विभिन्न जातियों की भाषाएँ होंगी— इस वराभीर चाण्डाल सचरद्रविडोद्र जा। टीना बनेचराणा च विभाषा नाटक स्मृता। ऐसी जातियाँ जब राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुई तो अपनी भाषाओं को भी महत्व दिया। अपभ्रंश भाषा और उनके साहित्य का विकास भिन्नताओं से संबंध रहकर ही संभवतया बच पाया। जैन भाण्डगारों से अपभ्रंश की अनेकानेक रचनाएँ प्राप्त हुई। इनमें कुछ तो सिद्धान्त ग्रंथ हैं और कुछ चरित काव्य हैं जिनमें चरित काव्य द्वारा उपदेश देने की चेष्टा है। जैनोत्तर साहित्य की उपेक्षा हुई है किन्तु इसके कुछ अंश प्राप्त हैं। स्फुट काव्यों में जो इन्दु (योगीन्द्र) क परमात्म प्रकाश तथा योगसार, मुनि सिंह का पुछुड़ दोहा है। सोभा प्रभका कुमार पाल प्रतिबोध, अद्रहमाण, (अद्वुरहमान) का संदेह रासक अधिक महत्वपूर्ण है। सामान्य जनता की धार्मिक भावनाएँ रुढ़ और परम्परागत रही। धर्म-परिवर्तन करने का भी संस्कार ज्यों के त्यों रहे। अन्धविश्वास और जड़ता से पिण्ड नहीं टूट सका। प्रचारकों ने भी मूढ़ जनता को ठगने और अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए उनकी सांस्कृतिक चैतन्य हीनता से लाभ उठाया। जन्त-मन्तर, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक, और चमत्कारों के प्रति बद्धमूल आस्था रही।

इस्लाम के आगमन से हिन्दू अभिजात्य वर्ग की धारणाओं में अधिक रुढ़िवादिता आई, संकुचित मनोभाव का जागरण हुआ। भक्ति धारा को शास्त्र-सम्यवत, शास्त्रीय एवं आगम-निगम प्रतिपादित कर वैष्णव धर्म को धारा में मिला दिया। वेद-विरोध, रुढ़िवाद, वैदिक आचार, वर्णाश्रम, पुस्तकीय ज्ञान के विरोध का स्वर जो पुरातन काल से सुनाई पड़ता रहा। गुप्तकालीन नवोहयीन हिन्दू धर्म का शासन सत्ता से विच्छेद होने के कारण स्पष्ट होने लगा था। सिद्धों और नावों की वाणी में बौद्ध धारणा का सूत प्राप्त होता है। समान और उसकी सांस्कृतिक चेतना के रूप में इस स्तर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। निम्न कुलोदय व्यक्तियों ने अपनी उच्चता का जो प्रतिपादन किया उसका विरोध आभिजात्य वर्गीय हिन्दुओं द्वारा। तुलसी का खीझ भरा विरोध स्पष्ट है, कबीर का उत्तर देने के लिए भक्ति को श्रुति सम्मतलोक कल्याण का सोपान उन्होंने स्वीकार किया।

मानवीय वृत्तियों के परिष्कार को भी संत ने सहज और स्वाभाविक माना है और उसकी वास्तविक प्रकृति को विकास जन्य। कृतिमता का वह प्रबल विरोधी है। जाति-धर्म व्यवस्था, सम्पत्ति, धर्माचरण सदि विधि विधान को वह, अतः सहज ही छोड़ सका था। सत्य के सहज आलोक को देख सकने में संत समर्थ हो सका था, जो साधना, अभिव्यक्ति, भक्ति योगमूलक अनुभूतियों को आलोकित कर सकने में समर्थ हुआ।

साहित्य के क्षेत्र में सांस्कृतिक अध्ययन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपभ्रंश में लिखित आदिकाल की साहित्यिक परंपरा अवधि एवं ब्रजभाषा में लिखित भक्ति एवं रीति की मध्यकालीन साहित्यिक परंपरा से बढ़कर हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल तक पहुँची। मध्यकालीन साहित्य का जगत तो बहुबोली देशी भाषा का था। मुगल साम्राज्य के साथ उत्तर भारत के लिए विस्तृत जगत् में यह मिश्रित भाषा, हिन्दवी, हिन्दुई, हिन्दी के नाम से बुलायी गयी। 18वीं शताब्दी के मध्य तक

बहुबोलियों की मुख्य भाषा को हिन्दवी, हिन्दुई कहा गया और उसकी क्षेत्रीय सीमा या भाषिक रूप स्पष्ट नहीं था। वस्तुतः इसी बहुबोलियों की बहुसंख्या के मिश्रित रूप को इसी स्पष्टता को लाने के लिए संस्कृत की ओर जुड़े हुए व्यावहारिक भाषा को हिन्दी और अरबी फारसी से संबंध व्यवहारिक भाषा रूप को उर्दू नाम दिया गया। मुगल साम्राज्य के पतन विभिन्न प्रोतों के निर्माण एवं पतन के प्रवाह में, औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी काल में भारत में राष्ट्रभाषा के पद को प्राप्त करने के लिए हरेक प्रान्तों का देशी भाषाओं के बीच में और उत्तर भारत में हिन्दी और उर्दू के बीच प्रतिस्पर्धी तनाव के रूप में भाषिक आंदोलन चला। इस आंदोलन प्रक्रिया के द्वारा हिन्दी और उर्दू का रूप व्यवस्थित हुआ। सामान्यतः सांस्कृतिक परिचर्चा को मूल भाषा के व्यवहार से शुरू होता है।

निष्कर्ष:

साधु सन्यासियों की दशा गृहस्थों से भिन्न नहीं थी। लोभी, बेशर्म, भिक्षुक अधिक थे। काषापाद, अर्धपाद, मावक आदि सिक्खों के लिए बाजार, चौरास्ते तथा राजद्वार पर उपदेश देते फिरते थे। गप मारने वाले, आत्म प्रशंसा करने वाले, ठग विद्या में पारंगत साधु चारों ओर घूमते फिरते रहते थे। अजीवक निर्वस्त्र एवं घुलि मण्डित रहकर एकान्त वनों का सेवन करते थे। महा विकट भोजन करते, बछड़े आदि का गोबर खाते तथा ओढ़ने और बिछाने के लिए वस्त्र नहीं लेते और न ही तापते थे। वे गृह नक्षत्र योग का विचार करते और गृहस्थ इनसे पूछताछ कर यदि पर्याप्त दक्षिणा नहीं देते तो क्रोध के कारण अहित साधन में तत्पर हो जाते थे। गौरतलब है कि भिक्षों अथवा शिष्यों से झगड़कर भिक्षु सन्यासी आश्रम छोड़ देते थे और वे इधर-उधर घूमते फिरते, मजदूरी अथवा नौकरी से जीविका निर्वाह करते एवं दरिद्र स्त्रियों से सहवास कर संतान करते। ऐसे आश्रमयुक्त व्यक्ति का अत्यन्त निरादर होता था एवं पता लगने पर गाँव वाले उन्हें अपने यहाँ से मार भगाते ऐसे व्यक्तियों को अनेक प्रकार से कष्ट उठाने पड़ते। हालांकि मध्यकालीन समय से यह समाज अधिक भिन्न नहीं था।

संत की सांस्कृतिक ज्ञान संबंध रूढ़ि सत्ता अथवा कलात्मक प्रयत्नों में नहीं देखी जा सकती, उसकी सांस्कृतिक चेतना उस अन्तःप्रेरणा को जागृत कर सकने में समर्थ हुई जो जीवन की पूर्णतः की आकांक्षा, वृत्तियों के संस्कार और महत्ता दे सकी थी। अन्तरात्मा स्वच्छता में ही सत्य के सहज आलोक की झांकी मिल सकती है। अतः इस दर्पण को स्वच्छ रखना आवश्यक है, सदा इसे माजते रहने की अपेक्षा है। अन्तर चेतना की जागरूक द्वारा आत्म संस्करण की सांस्कारित चेतना ही सहज भाव से सांस्कृतिक चैतन्य का स्वरूप ग्रहण करने में समर्थ हुई थी।

संदर्भ:

1. सम्पूर्णानंद, आर्यों का आदि देश, प्रथम संस्करण 1, पृष्ठ— 234।
2. मध्यकालीन भारत का इतिहास : एक समग्र अध्ययन सामग्री आलेख।
3. जातक, पृष्ठ— 288—229।
4. जातक 1, 3, 22, पृष्ठ— 230—31।
5. तित्थजातक 1, 3, 25, पृष्ठ— 240।
6. जातक (प्रथम संस्करण), नक्खत, पृष्ठ— 335।
7. जातक पंचा, पृष्ठ— 357।
8. भ, मा, 17, 19।
9. जातक, महासु, पृष्ठ 442—43।
10. जातक, भीमसेन जातक, 1, 8, 80, पृष्ठ— 462।
11. जातक, नक्खत, (1,5,49), पृष्ठ— 335।
12. जातक, लोमहंस (1,10,94), पृष्ठ— 511।
13. जातक, लोसक, पृष्ठ— 312।

14. वीरभारत तलवार: रस्साकशी:— उन्नीसवीं सदी का नवजागरण और पचिमोत्तर प्रांत (दिल्ली सारांश प्रकाशन), 2006।
15. बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास नई दिल्ली: राधाकृष्णन प्रकाशन (1996—2009)— पृष्ठ— 286।